विभिन्न हठयौगिक ग्रंथों में वर्णित साधक-बाधक तत्व का विवेचनात्मक अध्ययन

सौम्या* डॉ. नीलिमा पाठक* *

अमूर्त: प्रस्तुत शोध अध्ययन में विभिन्न हठयोग ग्रंथों के अध्ययन एवं हठयोगियों के साक्षात्कार के आधार पर वर्णित साधक-बाधक तत्त्व की विवेचना पर अध्ययन किया है। साधक-बाधक तत्व की अवधारणा, जो आध्यात्मिक और दार्शनिक प्रथाओं में सहायक और निरोधात्मक तत्त्वों को संदर्भित करती है, विभिन्न यौगिक ग्रंथों में व्यापक चर्चा का विषय रही है। इस शोध पत्र का उद्देश्य हठप्रदीपिका, घेरण्ड-संहिता, शिव संहिता जैसे ग्रंथों में वर्णित साधक-बाधक तत्त्व का व्यापक अध्ययन प्रदान करना हैं।

प्रस्तावना: योग की अनेक साधनाएं है जिनमें हठयोग का भी वर्णन मिलता हैं। जो हमें स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाती है। हठयोग दो शब्दों से मिलकर बना है। ह और ठ जिसको पिंगला और इडा भी कहा जाता हैं नाथ योगियों के अनुसार प्राण का प्रवाह इड़ा और पिंगला में होता है हठयोग ग्रंथ सिद्ध सिद्धांत पद्धति में महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी ने स्वयं कहा है –

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्चते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद् हठयोगो निगद्यते।।2।।

सूर्य (प्राण) को "ह" कहा जाता है और चन्द्र (अपान) को " ठ" कहते है। इन्ही "ह" और "ठ" (प्राण तथा अपान) के योग को हठयोग कहा जाता है। भारतीय संस्कृति की जड़ों में योग है। जहां योग विभिन्न रूपो मे विद्यमान है उन्ही में से एक रूप में हठयोग भी है। हठयोगियों के अनुसार आसन, षट्कर्म, मुद्रा, प्राणायाम आदि के अभ्यास के द्वारा आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार रूप में चित्त वृत्तियो का निरोध हठयोग है। हठयोग में योगी की शारीरिक शुद्धि को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है साधक को सिद्धि की ओर अग्रसर किया जाता है। इस्लिए योगी साधक-बाधक तत्त्व का ज्ञान होना आवशयक है।

साधक-बाधक तत्त्वों का अध्ययन करने से एक योग मार्ग पर प्राप्ति की प्रक्रिया को समझने में सहायता प्राप्त करता है। इससे उसे अपने मार्ग परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने की क्षमता मिलती है और उसे पूर्णता की दिशा में आगे बढने में मदद मिलती है। साधक-बाधक तत्त्वों का अध्ययन करने के लिए विभिन्न हठयौगिक ग्रन्थों का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन समय से ही भारतीय साहित्य में योग के महत्वपूर्ण ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें साधक-बाधक तत्त्वों का विस्तारपूर्ण विवेचन है। साधक बाधक तत्व की अवधारणा भारतीय दार्शनिक और आध्यात्मिक परंपराओं में गहराई से निहित है। यह उन तत्वों को संदर्भित करता है जो आत्म-प्राप्ति और आध्यात्मिक विकास के पथ पर किसी व्यक्ति की प्रगति का समर्थन या बाधा डालते हैं। ये तत्व न केवल व्यक्तिगत स्तर पर प्रासंगिक हैं बल्कि सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक प्रथाओं पर भी गहरा प्रभाव डालते है। इस शोध पत्र का उद्देश्य साधक-बाधक तत्व और समकालीन समय में इसकी प्रासंगिकता की गहरी समझ हासिल करने के लिए इन ग्रंथों में गहराई से जाना है।

* शोधार्थी, योग एंव नैचुरोपैथी विभाग सरला बिरला विश्वविद्यालय ,रांची.
** संकायाध्यक्ष, योग एंव नैचुरोपैथी विभाग सरला बिरला विश्वविद्यालय ,रांची, ईमेल - niraj.bdn@gmail.com

हठप्रदीपिका: हठ-प्रदीपिका में साधक-बाधक तत्त्वों के प्रकार, प्रक्रिया, प्रसिद्धि-लक्षण, महत्व का वर्णन किया है।

हठ-प्रदीपिका के अनुसार बाधक तत्व:

अत्याहार: प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रह: ।
जनसङ्गश्च लौल्यं च षड्भिर्योगो विनश्यति ।। 1/15।।

अर्थात अधिक भोजन, अधिक श्रम, अधिक बोलना, नियम पालन में आग्रह, अधिक लोक सम्पक तथा मन की चंचलता यह छः योग को नष्ट करने वाले तत्त्व है अर्थात् योग मार्ग में प्रगति के लिए बाधक है।उपर्युक्त ष्लोकानुसार जो विध्न बताये गये हैं उनकी व्याख्या अधोवर्णित है-

1 अत्याहार- आहार के अधिक मात्रा में ग्रहण से षरीर की जठराग्नि अधिक मात्रा में खर्च होती है तथा विभिन्न प्रकार के पाचन संबंधि रोग जैसे अपच, कब्ज, अम्लता, अग्निमांप आदि उत्पन्न होते है। यदि साधक अपनी ऊर्जा साधना में लगने के स्थान पर पाचन क्रि्रयाओं हेतु खर्च करता है या पाचन रोगों से निराकरण हेतु षट्कर्म, आदि क्रियाओं के अभ्यास में समय नष्ट करता है जिससे योग साधना प्राकृतिक रूप से बाधित होती है।

2 प्रयास- अत्यधिक प्रयास या अत्यधिक परिश्रम करने से भी योग मार्ग में बाधा उत्पन्न होती है। अत्यधिक परिश्रम का अर्थ ज्यादा षारीरिक श्रम अथवा मेहनत करना होता है। ज्यादा षारीरिक श्रम करने से षरीर की षक्ति अधिक मात्रा में खर्च होती है तो योग साधना के समय साधक को आलस आना षुरू हो जाता है। जिससे वह पूरी ऊर्जा के साथ योग साधना नही कर पाता है। इसलिए योगी को अनावष्यक षारीरिक श्रम से बचना चाहिए।

3 प्रजल्प- प्रजल्प अर्थात् अत्याधिक बोलना भी योग मार्ग में बाधा उत्पन्न करने वाला बाधक तत्त्व है। जो व्यक्ति अत्याधिक बोलता है उसका मन कभी स्थिर नही रह सकता है। साथ ही अधिक बोलने से षरीर की ऊर्जा भी ज्यादा खर्च होती है। साधक की जो ऊर्जा योग साधना में लगनी चाहिए वह अत्यधिक बोलने में व्यर्थ हो जाती है। इसके अलावा अधिक बोलने से व्यक्ति की बात की महत्ता भी कम हो जाती है। इसलिए योग साधक को बेकार की बकवास से बचना चाहिए।

4 नियमाग्रह:- वह सिद्धान्त या दिषा-निर्देष जिनका पालन किसी विषेष लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है वह नियम कहलाते हैं। इन आवष्यक दिषा-निर्देष के पालन से ही हम अपने विषेष प्रयोजन सिद्ध करते हैं। लेकिन कुछ व्यक्ति इन नियमों का पालन करने में कुछ ज्यादा ही कठोर हो जाते हैं। वह यह मानने लगते हैं कि इसी नियम का पालन किया जाना चाहिए अन्य किसी और नियम का नही। इससे वह एक ही नियम के प्रति ज्यादा कठोर हो जाते है। इसे एक प्रकार का हठ भी कह सकते हैं। जिस प्रकार एक बच्चा किसी खिलौने के लिए हठ कर लेता है और उसके न मिलने की स्थिति में वह काफी उत्पात भी मचाता है और रूष्ट भी हो जाता है। अतः एक योग साधक को इस प्रकार के हठ अर्थात् नियमाग्रह से बचना चाहिए।

5 जनसंग:- जनसंग अर्थात ज्यादा व्यक्तियों के सम्पर्क में रहने से भी योग मार्ग में सिद्धि प्राप्त नही होती है। जनसंग को योग मार्ग में बाधक माना है। इसलिए एक योग साधक को जनसंग का परित्याग करना चाहिए। जो योग साधक ज्यादा लोगों के सम्पक में रहता है वह योग मार्ग में आगे नही बढ़ पाता है, क्योंकि सभी व्यक्ति अलग-अलग स्वभाव वाले होते हैं। उनमें कुछ सात्विक प्रवृत्ति के होते हैं तो कुछ राजसिक व तामसिक प्रवृत्ति के होते हैं। सात्विक प्रवृत्ति के व्यक्तियों से सम्पर्क

स्थापित करने में कोई नुकसान नही होता है। लेकिन राजसिक व तामसिक प्रवृत्ति के लोगों से सम्पर्क रखने से साधना में विध्न पड़ता है। इसलिए योगी को अत्यधिक लोगों के सम्पर्क से बचना चाहिए। योग मार्ग में सफलता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है।

6 लौल्यं:- मन की चंचल प्रवृत्ति को भी योग में बाधक माना गया है। जब व्यक्ति का मन चंचल होता है तो उसकी किसी भी कार्य में एकाग्रता नही बन पाती है। एकाग्रता के अभाव में वो किसी भी कार्य को सफलतापूर्वक नही कर पाता है। किसी भी कार्य के सफलता और असफलता के बीच एकाग्रता का ही अंतर होता है। किसी कार्य को करते हुए यदि वक्त अगर मन एकाग्र है तो वह कार्य निश्चित तौर से सफल होता है और कार्य को करते हुए मन में एकाग्रता नही है अथवा एकाग्रता का अभाव है तो व्यक्ति उस कार्य में सफल नही हो पायेगा। मन की चंचलता योग मार्ग का बहुत बड़ा बाधक तत्त्व है। इसलिए योग की सिद्धि के लिए मन की चंचलता को दूर करना अति आवष्यक है।

योग ग्रंथ हठप्रदीपिका के अनुसार तत्त्वः-

उत्साहात्साद्धैर्यात्तत्त्वज्ञानाष्च निष्चयात्।
जनसंगपरित्यागात्षड्भिर्योगः प्रसिद्धयति।। 1/16।।

अर्थात् उत्साह, साहस, धैर्य, तत्त्व ज्ञान, दृढ़ निष्चय तथा जनसंग परित्याग, इन छहः साधक तŸवों से योग की सिद्धि होती है

उपर्युक्त ष्लोकानुसार जो विध्न बताये गये हैं उनकी व्याख्या अधोवर्णित है -

1. उत्साहः- स्वामी स्वात्माराम ने उत्साह को प्रथम साधक तत्त्व माना है। उत्साह का अर्थ है हिम्मत या हौसला। उत्साह सबसे महत्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि उत्साह ही वह साधन है जिससे बाकी के सभी साधनों का पालन किया जा सकता है। उत्साह के न होने से कोई भी व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त नही कर सकता । उत्साह है तो आप पहाड़ की चोटी को छू सकते हैं और यदि उत्साह नही है तो आपका जमीन पर चलना भी कठिन है। जब कोई भी साधक उत्साह साधना की षुरूआत करता है तो वह साधना में निरन्तर सफलता प्राप्त करता है।

2. साहसः- साहस को दूसरा साधक तत्त्व माना गया है। साहस के बिना आज तक कोई भी महान कार्य पूरा नही हुआ है। उत्साह से ही साहस का जन्म होता है। साधना में साहस का होना अनिवार्य है। साहस के साथ साधना करने से विष्वास बढ़ता है। अतःयोग साधना में साहस का होना अति आवष्यक है।

3. धैर्यः- धैर्य का अर्थ है सब्र करना या उतावलापन का न होना। धैर्य की आवष्यकता केवल योग साधना में ही नही बल्कि जिन्दगी के हर मोड़ पर होता है। बिना धैर्य के कोई भी व्यक्ति जीवन में अपने लक्ष्य को प्राप्त नही कर सकता। धैर्य वो चाबी है जो सभी बन्द दरवाजों को खोलती है। बहुत बार देखने में आता है कि नया योग साधक योग साधना प्रारम्भ करते ही यह चाहता है कि मुझे अति षीघ्र सफलता मिल जाए। यह जो उतावलापन है यह योग मार्ग में बाधक हैं प्रत्येक साधक को सब्र के साथ योग साधना में अग्रसर होना चाहिए। कहा भी है कि सब का फल मीठा होता है। अतः धैर्य भी योग साधना की सिद्धि में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

4. तत्त्व ज्ञानः- तत्त्व ज्ञान का अर्थ है किसी भी वस्तु या पदार्थ का यथार्थ अर्थात् सही ज्ञान होना। जब तक हमें किसी भी वस्तु या पदार्थ का सही-सही ज्ञान या उसकी वास्तविक जानकारी नही होती है, तब तक हम उनके स्वरूप को नही समझ

सकते। इसलिए किसी भी मार्ग में सफलता प्राप्त करने के लिए सबसे पहले हमें उस पदार्थ या वस्तु की सही जानकारी होनी चाहिए। यदि हमें किसी पदार्थ का वास्तविक ज्ञान नही है तो वह एक प्रकार का अस्मिता नामक क्लेष कहलाता है और क्लेष हमें योग मार्ग से दूर हटाने का कार्य करते हैं। इसलिए योग साधना में सफलता प्राप्त करने के लिए तत्त्व ज्ञान का होना अनिवार्य है।

5. दृढ़ निष्चय:- दृढ़ निष्चय एक ऐसा षब्द है। जिसे सुनते ही व्यक्ति में आत्म विष्वास भर जाता है। दृढ़ निष्चय का अर्थ है किसी भी कार्य को करने के लिए संकल्पित होना। जब हम किसी काम को करने के लिए वचन बद्ध होना या एक ही निष्चय के प्रति समर्पित होना दृढ़ निष्चय कहलाता है। बहुत सारे व्यक्तियों का मानना है कि एक मार्ग में यदि सफलता न मिले तो दूसरा विकल्प अपना लेना चाहिए। इस प्रकार कार्य न होने की अवस्था में आपके दूसरे विकल्प को अपनाना दृढ़ निष्चय और विष्वास की कमी को दर्षाता है। सफलता और असफलता के बीच कुछ है तो वह दृढ़ निष्चय ही हैं। जीवन में दृढ़ निष्चय का होना आपकी सफलता को पक्का करता है। अतः योग साधक को दृढ़ निष्चय वाला होना चाहिए।

6 जनसंग परित्याग:- जनसंग का अर्थ है बहुत सारे व्यक्तियों में सम्पक बनाना। जनसंग को योग मार्ग में बाधक माना गया है। इसलिए एक योग साधक को जनसंग का परित्याग करना चाहिए। ज्यादा लोगों के सम्पक में जो योगी रहता है वह योग मार्ग में नही बढ़ पाता है। क्योंकि सभी व्यक्ति अलग-अलग स्वभाव वाले होते हैं। उनमें कुछ सात्विक प्रवृत्ति के होते हैं तो कुछ राजसिक व तामसिक प्रवृत्ति के होते हैं। सात्विक प्रवृत्ति के व्यक्तियों से सम्पक स्थापित करने में कोई नुकसान नही होता है। राजसिक व तामसिक प्रवृत्ति के लोगों से सम्पक रखने से साधना में विध्न पड़ता है। इसलिए योगी को अत्यधिक लोगों के सम्पक से बचना चाहिए। योग मार्ग में सफलता प्राप्त करने के लिए यह आवष्यक है।

शिव संहिता के अनुसार योग के बाधक तत्त्व-

न भवेत् सङ्गयुक्तानां तथाविश्वासिनामपि ।
गुरुपूजाविहीनानां तथा च बहुसंगिनाम् ।।3/7।।
मिथ्यावादरतानां च तथा निष्ठुरभाषिणाम् ।
गुरुसन्तोषहीनानां न सिद्धिः स्यात् कदाचन ।। 3/18 ।।

व्याख्या- जो पुरुष सांसारिक कार्यों में निरत रहने वाले व्यक्तियों से अत्यधिक सम्पर्क रखते हैं तो उनसे भी सिद्धियाँ दूर रहती हैं। इसी प्रकार अविश्वासी तथा अश्रद्धालु पुरुष भी सिद्धियों को प्राप्त करने से वंचित रह जाया करते है। मिथ्यावादी, कर्कश वाणी बोलने वाले तथा गुरु के परितोष का ध्यान न रखने वाले व्यक्तियों की भी यही दशा होती है। अर्थात् वे सिद्धि-प्राप्ति हेतु सदा ही अयोग्य साबित होते हैं ।

शिव संहिता के अनुसार योग के साधक तत्त्व-

फलिष्यतीति विश्वासः सिद्धेः प्रथमलक्षणम् ।
द्वितीयं श्रद्धया युक्त तृतीयं गुरुपूजनम् ।। 3/19।।
चतुर्थं समताभावं पञ्चमेन्द्रियनिग्रहम् ।
षष्ठं च प्रमिताहारं सप्तमं नैव विद्यते ।। 3/20 ।।

व्याख्या- योगशास्त्र में सिद्धि-प्राप्ति के छह लक्षण बतलाये गये हैं जो इस प्रकार से हैं- 1. मन में विश्वास की भावना, 2. श्रद्धावान होना, 3. गुरु-पूजा परायणता, 4. समस्त प्राणियों में सम्भाव, 5. इन्द्रियों का दमन तथा 6. संतुलित आहार-

ग्रहण। ये ही छह लक्षण मुख्यतः कहे गये हैं। इनके अतिरिक्त कोई सातवाँ लक्षण नहीं होता।

घेरण्ड संहिता के अनुसार योग के बाधक तत्त्व-

आदौ स्थानं तथा कालं मिताहारं तथा परम्।
नाड़ीशुद्धिश्च तत् पश्चात् प्राणायामंच साधयेत ।। 5/ 2।।

व्याख्या- साधक पहले स्थान तथा समय उसके बाद मिताहार और फिर नाड़ीशुद्धि को जानकर उनका पालन करे। उसके बाद ही उसे प्राणायाम की साधना का अभ्यास करना चाहिए।

घेरण्ड संहिता के अनुसार योग के साधक तत्त्व-

दूरदेशे तथारण्ये राजधान्यां तथान्तिके।
योगारम्भं न कुर्वीत कृतेच सिद्धिहाभवेत् ।। 5/ 3।।

साधक को निम्न स्थानों पर योग के अभ्यास को आरम्भ नहीं करना कहीं दूर स्थान पर अर्थात् अपने घर से बहुत दूर, जंगल अथवा वन में, बड़े नगरों में अर्थात् भीड़-भाड़ वाले स्थानों पर जहाँ पर बहुत अधिक लोग रहते हों। इन स्थानों पर योग करने से साधक को कभी भी योग में सिद्धि प्राप्त नहीं होती है।

निष्कर्षः

साधक-बाधक तत्त्व की अवधारणा, या यौगिक अभ्यास में कारकों को सुविधाजनक बनाने और बाधित करने का सिद्धांत, विभिन्न यौगिक ग्रंथों में एक आवर्ती विषय है। इन सभी ग्रंथों में, आत्म-प्राप्ति के मार्ग पर प्रगति के लिए बाधाओं पर काबू पाने और आध्यात्मिक विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों को विकसित करने के विचार पर जोर दिया गया है। कुल मिलाकर, विभिन्न यौगिक ग्रंथों में साधक- बाधक तत्व का अध्ययन आध्यात्मिक व यौगिक विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों का पोषण करते हुए बाधाओं को पहचानने और उन पर काबू पाने के महत्व की सार्वभौमिक मान्यता को रेखांकित करता है। यह व्यापक समझ व्यक्तियों को आत्म-साक्षात्कार के उनके संबंधित पथों पर मार्ग दर्शन कर सकती है और विभिन्न परंपराओं में यौगिक अभ्यास की बहुमुखी प्रकृति की गहरी सराहना कर सकती है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. स्वात्मारामकृतः हठप्रदीपिका, कैवल्यधान, श्रीमन्नधाय योग मन्दिर समिति गुणे। (2001)
2. दिगम्बर जी स्व जी स्वामी झा डां पीतम्बरः हडप्रदीपिका, कैवल्यवान श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति पुणे (2001) परमहंस स्वामी अनन्त भारतीः हठयोगप्रदीपिका, चौखम्बा ओरियन्टालिया प्रकाशन।
3. सतपाल खीचरः हउरत्नावली, नोशन प्रेस दिल्ली।हठ रत्नावली श्रीनिवास
4. शर्मा, सुरेन्द्र कुमार (1985) हठयोग-एक ऐतिहासिक परिपेक्ष्य एव हठयोग प्रदीपिका, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली।
5. सरस्वती, निरंजानन्द (1997) घेरण्ड संहिता, योग पब्लिकेषन ट्रस्ट, मुंगेर (बिहार)
6. शर्मा, सुरेन्द्र कुमार (1985) हठयोग-एक ऐतिहासिक परिपेक्ष्य एव हठयोग प्रदीपिका, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली।
7. योगी आदित्यनाथ (2007) " हठयोग स्वरूप एवंम साधना " श्री गोरक्षनाथ मन्दिर, गोरखपुर।

❐